[2010] 7 एस.सी.आर. 154

भारत माता एवं एक अन्य

बनाम

आर. विजया रंगनाथन एवं अन्य

(2003 की दीवानी अपील संख्या 7108)

17 मई, 2010

[डॉ. बी.एस. चौहान एवं स्वतंत्र कुमार, न्यायमूर्तिगण]

दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908

धारा 100 - द्वितीय अपील - कार्यक्षेत्र - उच्च न्यायालय द्वारा दोनों अधीनस्थ न्यायालयों द्वारा दर्ज किए गए 'तथ्यों के समवर्ती निष्कर्ष' को रद्द करना, जिसमें यह कहा गया था कि इस तथ्य को देखते हुए कि प्रतिवादी का पति संबंधित समय पर जीवित था, उसके और वादी के भाई के बीच विवाह की परिकल्पना नहीं की जा सकती - अभिनिर्धारित : उच्च न्यायालय ने दस्तावेजी साक्ष्यों का पुनः मूल्यांकन किया, और वादी के गवाहों के साक्ष्य पर विचार नहीं किया जिन पर अधीनस्थ न्यायालयों ने भरोसा किया था, बल्कि केवल बचाव साक्षी -1 के साक्ष्य पर भरोसा करते हुए विवाह की उपकल्पना पर निर्णय लिया, जिसे अधीनस्थ न्यायालयों ने ठोस कारणों से अविश्वास किया था - धारा 100 के तहत द्वितीय अपील का निर्णय करते समय ऐसा तरीका अपनाना स्वीकार्य नहीं है - उच्च न्यायालय का निर्णय रद्द किया गया।

हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955:

धारा 5 - विवाह - परिकल्पना - अभिनिर्धारित: यदि 'लिव-इन रिलेशनशिप' (सह-जीवन संबंध) के किसी एक पक्ष का जीवनसाथी जीवित है, तो केवल उन दो पक्षों के बीच लिव-इन रिलेशनशिप से उनके बीच विवाह की परिकल्पना नहीं होगी।

धारा 16(2) - शून्य या शून्यकरणीय विवाहों से उत्पन्न बच्चों की वैधता - निर्णय:

धारा 16 में निहित कानूनी कल्पना के मद्देनजर, अवैध बच्चों को उनके माता-पिता की संपत्तियों के उत्तराधिकार सहित सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए वैध माना जाना चाहिए - लेकिन, वे किसी अन्य संबंधी की संपत्तियों के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते।

साक्ष्य अधिनियम, 1872:

धारा 112 - विवाह के दौरान जन्म, वैधता का निर्णायक प्रमाण - किसी बच्चे के वैध होने की परिकल्पना को केवल साक्ष्यों की प्रबलता द्वारा ही हटाया जा सकता है, न कि केवल संभावनाओं के संतुलन के आधार पर - संबंधित अवधि के दौरान विवाह के पक्षों के बीच 'अगम्यता' का प्रमाण ही इस परिकल्पना का खंडन करने का एकमात्र तरीका है - वर्तमान मामले में, कानूनी रूप से अस्तित्व में रहे विवाह के पक्षों के बीच अगम्यता का प्रमाण कभी भी दलील में नहीं लाया गया था - हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 5 और 16।

सम्पत्ति अंतरण अधिनियम, 1882:

धारा 52 - वादकालीन अंतरण - अभिनिर्धारित : चूंकि मालिक अभी भी वाद संपत्ति के कब्जे में हैं और उनके स्वामित्व की घोषणा के वाद को डिक्री कर दिया गया है, इसलिए खरीदार अपने विक्रेताओं से बिक्री प्रतिफल की वसूली के लिए कानूनी कार्यवाही का सहारा ले सकता है - हिन्दू विवाह अधिनियम, 1955 - धारा 5 और 16 - दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 - धारा 100।

अपीलकर्ताओं के पूर्ववर्ती-हितधारक ने उत्तरदाता संख्या 2 से 5 के विरुद्ध एक वाद दायर किया, जिसमें उन्होंने अपने भाई 'एम.आर.' द्वारा छोड़ी गई वाद संपत्ति में अपने हिस्से का दावा किया, जिसकी मृत्यु बिना वसीयत किए हुई थी और जिसे अविवाहित बताया गया था। यह कहा गया था कि प्रतिवादी-1 (उत्तरदाता संख्या 2) का विवाह 'ए.आर.' नामक व्यक्ति से हुआ था, जो वाद संस्थित करने की तिथि पर जीवित था, और 'एम.आर.' के साथ उसके लिव-इन रिलेशनशिप तथा उससे दो बच्चे होने के दावे को खारिज किया जाना चाहिए। प्रतिवादी संख्या 1 ने 'ए.आर.' के साथ अपने विवाह से इनकार किया। विचारण न्यायालय ने

वाद में डिक्री पारित कर दी। उत्तरदाता संख्या 1 ने, प्रथम अपील लंबित रहने के दौरान वाद संपत्ति को खरीदने के कारण, स्वयं को अपील में एक पक्ष के रूप में शामिल करवाया। प्रथम अपीलीय न्यायालय ने डिक्री की पुष्टि की। हालांकि, उच्च न्यायालय ने उत्तरदाताओं द्वारा दायर द्वितीय अपील को स्वीकार कर लिया। इससे व्यथित होकर, वादी के उत्तराधिकारियों ने यह अपील दायर की।

अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय द्वारा

अभिनिर्धारित: 1.1. उच्च न्यायालय, द्वितीय अपील का निर्णय करते समय, तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है, बशर्ते कि अधीनस्थ न्यालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत हों। वर्तमान मामले में, विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय ने तथ्य का एक सुस्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि उत्तरदाता संख्या 1 'एआर' की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी थी, जो वाद संस्थित करने की तिथि पर जीवित था और इसलिए, उत्तरदाता संख्या 1 और 'एमआर' (याचिका के भाई) के बीच उपधारणा द्वारा विवाह का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा; और इसे निर्धारित करने के लिए अभिलेख पर मौजूद सभी सामग्रियों, जिसमें बचाव साक्षी 1 के बयान के साथ-साथ अन्य सभी प्रतिरक्षी गवाहों और दस्तावेजों, विशेष रूप से प्रदर्श बी14, बी18, बी 19 और बी 2 शामिल हैं, पर विचार किया गया था। अधीनस्थ न्यालयों ने वादी द्वारा परीक्षित गवाहों, विशेष रूप से अभियोजन साक्षियों 2 और 5 पर बहुत अधिक भरोसा किया। उच्च न्यायालय ने वादी के गवाहों, विशेष रूप से अभियोजन साक्षी 2 और अभियोजन साक्षी 5 के साक्ष्यों का कोई संदर्भ दिए बिना, तथ्य के निष्कर्ष को उलट दिया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उक्त दोनों पक्षों के बीच केवल 'लिव-इन-रिलेशनशिप' (सह-जीवन संबंध) से उनके बीच विवाह की उपधारणा होगी। उच्च न्यायालय ने 'एआर' और उत्तरदाता संख्या 1 के बीच विवाह के तथ्य के संबंध में केवल बचाव साक्षी 1,जो 'एम आर' की सौतेली माँ थी, के बयान पर भरोसा करते हुए निर्णय लिया है, जिसे अधीनस्थ न्यालयों द्वारा ठोस कारण बताते हुए अविश्वास किया गया था। धारा 100 दीवानी प्रक्रिया संहिता के

तहत द्वितीय अपील का निर्णय करते समय ऐसा तरीका स्वीकार्य नहीं है। [कंडिका 7, 9, 13 और 17] [163-बी -सी; 163-एफ; 166-जी]

एच.बी. गांधी, आबकारी एवं कराधान अधिकारी-सह-निर्धारण प्राधिकारी, करनाल एवं अन्य बनाम मैसर्स गोपी नाथ एंड संस एवं अन्य **1992 पूरक (2) एस.सी.सी. 312;** *मैसर्स त्रिवेणी रबर एंड प्लास्टिक्स बनाम कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, कोचीन* **ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1341;** *कुलदीप सिंह बनाम कमिश्नर ऑफ पुलिस एवं अन्य* **(1998) 3 पूरक एस.सी.आर. 594 = (1999) 2 एस.सी.सी. 10;** *गया दीन (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम हनुमान प्रसाद (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य* **ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 386;** *राजिंदर कुमार किंद्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, सचिव (श्रम) एवं अन्य के माध्यम से* **(1985) 1 एस.सी.आर. 866 = ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1805;** *शैल चंद बनाम प्रकाश चंद* **(1998) 1 पूरक एस.सी.आर. 297 = ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 3063;** *राजप्पा हनुमंत रणोजी बनाम महादेव चन्नाबसप्पा एवं अन्य* **ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 2108;** *कुलवंत कौर एवं अन्य बनाम गुरदयाल सिंह मान (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा* **(2001) 2 एस.सी.आर. 525 = ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 1273, अवलंबित ।**

1.2. उच्च न्यायालय ने दस्तावेजी साक्ष्यों का भी पुनर्मूल्यांकन किया और अधीनस्थ न्यालय द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के विपरीत दृष्टिकोण अपनाया। उच्च न्यायालय के लिए द्वितीय अपील में साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करना उचित नहीं था क्योंकि इसमें कानून का कोई सारवान प्रश्न शामिल नहीं था। इस तथ्य को देखते हुए कि उच्च न्यायालय ने वादी के गवाहों के बयान पर ध्यान तक नहीं दिया, उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष स्वयं विकृत हो जाते हैं और इस प्रकार अपास्त किए जाने योग्य हैं। [कंडिका 17-18] [166-एच; 167-ए -सी]

2. उच्च न्यायालय ने यह समझने में त्रुटि की कि अधीनस्थ न्यालय के निर्णय

साक्ष्य अधिनियम, 1872 की धारा 112 के तहत प्रदान की गई एक अन्य उपधारणा पर आधारित हो सकते थे, यानी एक बच्चे के वैध होने की उपधारणा, और ऐसी उपधारणा को केवल साक्ष्यों की प्रबल प्रधानता द्वारा ही विस्थापित किया जा सकता है, न कि केवल संभावनाओं के संतुलन के आधार पर, क्योंकि कानून को निर्दोष बच्चे के पक्ष में खड़ा होना चाहिए ताकि उसे नाजायज होने से बचाया जा सके। वर्तमान मामले में, चूंकि उत्तरदाता संख्या 1 और 'एआर' के बीच 'अगम्यता' का प्रमाण कभी भी अभिवचनों में नहीं लाया गया था, इसलिए उच्च न्यायालय ने मामले की सही परिप्रेक्ष्य में जांच नहीं की है। यह स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि प्रासंगिक अवधि के दौरान विवाह के पक्षों के बीच 'अगम्यता' का प्रमाण ही उस उपधारणा को खंडित करने का एकमात्र तरीका है। [कंडिका 15-16] [166-ए-डी]

मोहब्बत अली खान बनाम मुहम्मद इब्राहिम खान एवं अन्य ए.आई.आर. 1929 पी.सी. 135; *चिलुकुरी वेंकटेश्वरलू बनाम चिलुकुरी वेंकटनारायण* (1954) एस.सी.आर. 424 = ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 176; *महेंद्र मणिलाल नानावती बनाम सुशीला महेंद्र नानावती* (1964) एस.सी.आर. 267 = ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 364; *पेरुमल नाडार (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम पोन्नुस्वामी नाडार (अल्पवयस्क)* (1971) एस.सी.आर. 49 = ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 2352; *अमरजीत कौर बनाम हरभजन सिंह एवं एक अन्य* (2003) 10 एस.सी.सी. 228; *सभा ह्यमावती देवी बनाम सेट्टी गंगाधरा स्वामी एवं अन्य* (2005) 1 एस.सी.आर. 848 = ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 800; *एवं श्री बनारसी दास बनाम टीकू दत्ता (श्रीमती) एवं एक अन्य* (2005) 3 एस.सी.आर. 923 = (2005) 4 एस.सी.सी. 449, अवलंबित।

3.1. हिंदू विवाह अधिनियम की धारा 5(1) हिंदू विवाह के लिए शर्तें निर्धारित करती है। यह प्रावधान करती है कि किन्हीं दो हिंदुओं के बीच विवाह तब संपन्न किया जा सकता है जब विवाह के समय उनमें से किसी का भी जीवनसाथी जीवित न हो। अधिनियम की

धारा 11 प्रावधान करती है कि कोई भी विवाह जो धारा 5(1) के उल्लंघन में है, शून्य होगा। 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित धारा 16 का मुख्य उद्देश्य सामाजिक सुधार लाना और बच्चों के एक समूह को वैधता का सामाजिक दर्जा प्रदान करना है, जिन्हें अन्यथा नाजायज माना जाता था। धारा 16 में निहित कानूनी कल्पना को देखते हुए, नाजायज बच्चों को, अपने माता-पिता की संपत्तियों के उत्तराधिकार सहित सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए, वैध माना जाना चाहिए। हालांकि, वे इस नियम के आधार पर किसी अन्य रिश्तेदार की संपत्तियों के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते, क्योंकि इसका संचालन माता-पिता की संपत्तियों तक ही सीमित है। [कंडिका 19-20 और 23] [167-डी -इ; 168--जी-एच]

एस. पी. एस. बालसुब्रमण्यम बनाम सुरुत्तयन उर्फ़ अंदली पडायची एवं अन्य; ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 756; *एस. खुशबू बनाम कनिअम्मल एवं अन्य* जे.टी. (2010) 4 एस.सी. 478; *लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य* (2006) 3 पूरक एस.सी.आर. 350 = ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2522; *श्रीमती पी.ई.के. कल्लियाणी अम्मा एवं अन्य बनाम के. देवी एवं अन्य* (1996) 2 पूरक एस.सी.आर. 1 = ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1963, संदर्भित।

रामेश्वरी देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य (2000) 1 एस.सी.आर. 390 = ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 735; *जीनिया किओटिन एवं अन्य बनाम कुमार सीताराम मांझी एवं अन्य* (2002) 5 पूरक एस.सी.आर. 689 = (2003) 1 एस.सी.सी. 730; *नीलम्मा एवं अन्य बनाम सरोजम्मा एवं अन्य* (2006) 9 एस.सी.सी. 612, संदर्भित।

3.2. यह स्पष्ट है कि शून्य या शून्यकरणीय विवाह से पैदा हुआ बच्चा पैतृक सहदायिकी संपत्ति में उत्तराधिकार का दावा करने का हकदार नहीं है, बल्कि वह केवल अपने माता-पिता की स्व-अर्जित संपत्तियों; यदि कोई हो, में हिस्सा पाने का हकदार है। वर्तमान मामले में, उत्तरदाताओं ने किसी भी स्तर पर यह तर्क नहीं दिया कि वाद की भूमि 'एम आर' की स्व-अर्जित संपत्ति थी। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि 'एम आर' ने अपनी संयुक्त परिवार

की संपत्तियों का विभाजन नहीं किया था। 1974 में उनकी मृत्यु निसंतान और बिना वसीयत के हुई थी। इसलिए, सह-दायिकी संपत्ति में उन नाजायज बच्चों के उत्तराधिकार का प्रश्न, जो सह-जीवन संबंध से पैदा हुए थे, उत्पन्न ही नहीं हो सकता था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय का निर्णय केवल इसी एकमात्र आधार पर अभिखंडित किए जाने योग्य है। [कंडिका 27-28] [171-बी -डी]

4. उत्तरदाता -5 के लिए कानून में अनुमेय कानूनी कार्यवाही के माध्यम से अपने विक्रेताओं से बिक्री प्रतिफल की वसूली के लिए मार्ग खुला रहेगा, क्योंकि उसने वाद संपत्ति को 'लंबित वाद' के दौरान खरीदा है और अपीलकर्ता अभी भी उस पर काबिज हैं। [कंडिका 30] [171-इ -एफ]

नज़ीर संदर्भ :

(1998) 1 पूरक एस.सी.आर. 297	अवलंबित	कंडिका 10
ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 2108	अवलंबित	कंडिका 11
(2001) 2 एस.सी.आर. 525	अवलंबित	कंडिका 12
1992 पूरक (2) एस.सी.सी. 312	अवलंबित	कंडिका 14
ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1341	अवलंबित	कंडिका 14
(1998) 3 पूरक एस.सी.आर. 594	अवलंबित	कंडिका 14
ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 386	अवलंबित	कंडिका 14
(1985) 1 एस.सी.आर. 866	अवलंबित	कंडिका 14
ए.आई.आर. 1929 पी.सी. 135	अवलंबित	कंडिका 16
(1954) एस.सी.आर. 424	अवलंबित	कंडिका 16
(1964) एस.सी.आर. 267	अवलंबित	कंडिका 16
(1971) एस.सी.आर. 49	अवलंबित	कंडिका 16
(2003) 10 एस.सी.सी. 228	अवलंबित	कंडिका 16

(2005) 1 एस.सी.आर. 848	**अवलंबित**	**कंडिका 16**
(2005) 3 एस.सी.आर. 923	**अवलंबित**	**कंडिका 16**
ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 756	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
जे.टी. (2010) 4 एस.सी. 478	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
(2006) 3 पूरक एस.सी.आर. 350	**संदर्भित**	**कंडिका 22**
(1996) 2 पूरक एस.सी.आर. 1	**संदर्भित**	**कंडिका 23**
(2000) 1 एस.सी.आर. 390	**संदर्भित**	**कंडिका 24**
(2002) 5 पूरक एस.सी.आर. 689	**संदर्भित**	**कंडिका 25**
(2006) 9 एस.सी.सी. 612	**संदर्भित**	**कंडिका 26**

दीवानी अपीलीय क्षेत्राधिकार: वर्ष 2003 की दीवानी अपील संख्या 7108

वर्ष 1987 में द्वितीय अपील संख्या 1603 में मद्रास उच्च न्यायालय के निर्णय एवं आदेश दिनांक 10.07.2001 से उत्पन्न ।

अपीलकर्ताओं की ओर से: के. राम कुमार।

उत्तरदाताओं की ओर से: साई कृष्णा राजगोपाल, हरि शंकर, विकास सिंह जांगड़ा, भरत एस. कुमार।

न्यायालय का आदेश इनके द्वारा सुनाया गया:

आदेश

डॉ. बी.एस. चौहान, न्यायमूर्ति. 1. यह अपील मद्रास उच्च न्यायालय के दिनांक 10 जुलाई, 2001 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध दायर की गई है, जिसके द्वारा उत्तरदाता संख्या 1 द्वारा दायर अपील को स्वीकार कर लिया गया था। उक्त अपील प्रथम अपीलीय न्यायालय के दिनांक 17.9.1986 के निर्णय और डिक्री के विरुद्ध थी, जिसने विचारण न्यायालय के दिनांक 7.3.1977 के ओ.एस. संख्या 269/1975 में दिए गए निर्णय और डिक्री की पुष्टि की थी। यह वाद वर्तमान अपीलकर्ताओं के पूर्वाधिकारी द्वारा विवादित संपत्ति पर दावा करने और

उत्तरदाता संख्या 2 से 5 या उनके पूर्वाधिकारियों के हिस्से को नकारने के लिए संस्थित किया गया था।

2. वर्तमान मामले को जन्म देने वाले तथ्य और परिस्थितियाँ यह हैं कि वर्तमान अपीलकर्ताओं की पूर्वाधिकारी, पेरिया मरिअम्मल ने प्रत्यर्थियों और उनके पूर्वाधिकारियों के विरुद्ध ओ.एस. संख्या 269/1975 के रूप में एक वाद दायर किया था। इसमें उन्होंने अपने भाई मुथु रेड्डियार के हिस्से का दावा इस आधार पर किया था कि उनकी मृत्यु अविवाहित और बिना वसीयत के हुई थी, और यह कि वाद में प्रतिवादी संख्या 1, श्रीमती रेंगम्मन, एक अलगसामी रेड्डियार की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी थी, जो अभी भी जीवित था। इसलिए, उनका यह दावा कि उनका याचिकाकर्ता के भाई मुथु रेड्डियार के साथ सह-जीवन संबंध था और उनसे उनके दो बच्चे थे, को नजरअंदाज किया जाना चाहिए। प्रतिवादियों/उत्तरदाताओं ने प्रतिवादी संख्या 1 और उक्त अलगसामी रेड्डियार के बीच विवाह से इनकार करते हुए वाद का विरोध किया। विचारण न्यायालय ने दिनांक 7 मार्च, 1977 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से वाद को डिक्री कर दिया और यह निष्कर्ष दर्ज किया कि वाद में प्रतिवादी संख्या 1, रेंगम्मन, अलगसामी रेड्डियार की पत्नी थी जो वाद दायर करने के समय जीवित था। उनके बीच कोई कानूनी अलगाव नहीं हुआ था। इसलिए, मुथु रेड्डियार के साथ श्रीमती रेंगम्मन के सह-जीवन संबंध का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता था।

3. व्यथित होने पर, प्रतिवादियों ने प्रथम अपील दायर की। वर्तमान उत्तरदाता संख्या 1, विजया रेंगनाथन ने प्रथम अपील के लंबित रहने के दौरान 1978 में लगभग 10,000/- रुपये की राशि में वाद संपत्ति खरीदी और स्वयं को अपील में एक पक्ष के रूप में शामिल करवाया। अपीलीय न्यायालय ने दिनांक 17 सितंबर, 1986 के निर्णय और डिक्री के माध्यम से प्रथम अपील को खारिज कर दिया। उक्त क्रेता, उत्तरदाता संख्या 1 ने अकेले उच्च न्यायालय के समक्ष दीवानी प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसके बाद 'सीपीसी' कहा गया है) की धारा 100 के तहत द्वितीय अपील दायर की, जिसे स्वीकार कर लिया गया है। अतः, यह

अपील।

4. अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता ने यह दलील दी है कि मूल प्रतिवादी संख्या 1, श्रीमती रेंगम्मन, अलगरसामी की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी थी और वह अभी भी जीवित था। इसलिए, मुथु रेड्डियार के साथ सह-जीवन संबंध रखने के कारण विवाह की उपधारणा का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता था। ऐसी स्थिति में, मुथु रेड्डियार भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे इसके बाद 'आईपीसी' कहा गया है) की धारा 497 के तहत जारकर्म के अपराध के लिए उत्तरदायी हो सकते थे। इसके अलावा, भले ही सह-जीवन संबंध स्वीकार कर लिया जाए और यह भी स्वीकार कर लिया जाए कि उस सह-जीवन संबंध से दो बच्चे पैदा हुए थे, तो भी उक्त बच्चे सहदायिकी संपत्ति के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते। किसी भी निचली अदालत द्वारा यह निष्कर्ष दर्ज न किए जाने की स्थिति में कि वाद की भूमि मुथु रेड्डियार की स्व-अर्जित संपत्ति थी, उच्च न्यायालय का निर्णय रद्द किए जाने योग्य है। अधिक से अधिक, वर्तमान उत्तरदाता संख्या 1 अपने विक्रेताओं से बिक्री प्रतिफल की वसूली का दावा कर सकते हैं क्योंकि कब्जा अभी भी वर्तमान अपीलकर्ताओं के पास है।

5. इसके विपरीत, उत्तरदाता संख्या 1 के विद्वान अधिवक्ता ने अपीलकर्ताओं के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों का पुरजोर विरोध किया। उन्होंने तर्क दिया कि उच्च न्यायालय ने अभिलेख पर मौजूद साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करने के बाद यह निष्कर्ष निकाला कि श्रीमती रेंगम्मन का अलगसामी रेड्डियार के साथ विवाह का तथ्य वर्तमान अपीलकर्ताओं द्वारा सिद्ध नहीं किया जा सका। उनके सह-जीवन संबंध के कारण, मुथु रेड्डियार और श्रीमती रेंगम्मन के बीच विवाह की उपधारणा की जा सकती थी और इसलिए, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 (जिसे इसके बाद "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 16 के प्रावधानों को देखते हुए, उस सह-जीवन संबंध से पैदा हुए दो बच्चे मुथु रेड्डियार की संपत्ति के उत्तराधिकारी होने के हकदार थे। इस प्रकार, अपील खारिज किए जाने योग्य है।

6. हमने पक्षों के विद्वान अधिवक्ता की परस्पर दलीलों पर विचार किया है और

अभिलेख का अवलोकन किया है।

7. विचारण न्यायालय के साथ-साथ प्रथम अपीलीय न्यायालय ने तथ्य का एक सुस्पष्ट निष्कर्ष दर्ज किया है कि प्रतिवादी संख्या 1, श्रीमती रेंगम्मल का विवाह अलगसामी रेड्डियार से हुआ था, जो वाद संस्थित करने की तिथि पर जीवित था और इसलिए, श्रीमती रेंगम्मन और मुथु रेड्डियार के बीच उपधारणा द्वारा विवाह का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होगा; और इसे निर्धारित करने के लिए अभिलेख पर मौजूद सभी सामग्रियों पर विचार किया गया था, जिसमें सीताम्मन, बचाव साक्षी 1 के बयान के साथ-साथ अन्य सभी प्रतिरक्षी गवाहों और दस्तावेजों, विशेष रूप से प्रदर्श बी 14, बी 18, बी 19 और बी 2 शामिल हैं।

8. हालांकि, उच्च न्यायालय ने कानून के दो सारवान प्रश्न निर्मित किए, जो निम्नलिखित हैं:

(क) क्या प्रथम प्रतिवादी और मुथु रेड्डियार के स्वीकृत लंबे सह-जीवन के आधार पर, वैध विवाह की कानूनी उपधारणा स्थापित नहीं होती है; और

(ख) क्या प्रतिवादी और अलगसामी रेड्डियार के बीच पूर्व और वर्तमान विवाह का विशिष्ट मामला, जैसा कि वादी द्वारा प्रस्तुत किया गया है, कानून की आवश्यकता के अनुसार स्थापित होता है और क्या वह प्रतिवादी 1 से 3 पर अधिमान्य दावे का अधिकार रख सकती थी?

9. सारवान प्रश्न (ख) का निर्धारण करते समय उच्च न्यायालय ने केवल मुथु रेड्डियार की सौतेली माँ, सीताम्मन, बचाव साक्षी 1 के बयान पर विचार किया और वादी के उन गवाहों के साक्ष्यों पर विचार नहीं किया जिन पर निचली अदालतों ने भरोसा किया था, विशेष रूप से कुमारसामी अभियोजन साक्षी 2 और कंडासामी अभियोजन साक्षी 5, और दस्तावेजी साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन किया। इसलिए, यह प्रश्न उठता है कि क्या सीपीसी की धारा 100 के तहत द्वितीय अपील का निर्णय करते समय ऐसा तरीका अनुमेय है।

10. *शील चंद बनाम प्रकाश चंद*, ए.आई.आर. 1998 एस.सी. 3063 में, इस

न्यायालय ने यह माना कि साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन का प्रश्न और यह सारवान प्रश्न निर्मित करना कि क्या निचली अदालत द्वारा तथ्यात्मक मैट्रिक्स से संबंधित निष्कर्ष अप्रासंगिक विचारों के कारण दूषित हो सकते हैं और कानून के तहत नहीं, तथ्य का प्रश्न होने के कारण निर्मित नहीं किए जा सकते।

11. *राजप्पा हनुमंत रणोजी बनाम महादेव चन्नाबसप्पा एवं अन्य, ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 2108* में, इस न्यायालय ने माना कि उच्च न्यायालय के लिए द्वितीय अपील का निर्णय साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करके इस तरह करना अनुमेय नहीं है जैसे कि वह प्रथम अपील का निर्णय कर रहा हो, जब तक कि वह इस निष्कर्ष पर न पहुँच जाए कि अधीनस्थ न्यालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत थे।

12. *कुलवंत कौर एवं अन्य बनाम गुरदयाल सिंह मान (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों द्वारा, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 1273* में, इस न्यायालय ने माना कि यह प्रश्न कि क्या अधीनस्थ न्यालय का निष्कर्ष विकृत है, कानून के सारवान प्रश्न के दायरे में आ सकता है। हालांकि, सीपीसी की धारा 100 के प्रावधानों का अनुपालन दिखाने के लिए उच्च न्यायालय के निर्णय में विकृति के संबंध में एक स्पष्ट निष्कर्ष होना चाहिए। इस प्रकार, इस न्यायालय ने उस प्रस्ताव को खारिज कर दिया कि द्वितीय अपील में साक्ष्य की जांच पूरी तरह से निषिद्ध है।

13. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय द्वितीय अपील का निर्णय करते समय तथ्य के निष्कर्ष में हस्तक्षेप कर सकता है, बशर्ते कि अधीनस्थ न्यालयों द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष विकृत हों।

14. *एच.बी. गांधी, आबकारी एवं कराधान अधिकारी-सह-निर्धारण प्राधिकारी, करनाल एवं अन्य बनाम मैसर्स गोपी नाथ एंड संस एवं अन्य, 1992 पूरक (2) एस.सी.सी. 312* में, इस न्यायालय ने माना कि यदि तथ्य का निष्कर्ष प्रासंगिक सामग्री की उपेक्षा या बहिष्करण करके, या अप्रासंगिक सामग्री पर विचार करके निकाला गया है, या यदि निष्कर्ष तर्क का

इतनी क्रूरता से उल्लंघन करता है कि वह तर्कहीनता के दोष से ग्रस्त होकर विकृत होने का दोष अर्जित करता है, तो वह निष्कर्ष कानून की दृष्टि में दोषपूर्ण हो जाता है। मैसर्स त्रिवेणी रबर एंड प्लास्टिक्स बनाम कलेक्टर ऑफ सेंट्रल एक्साइज, कोचीन, ए.आई.आर. 1994 एस.सी. 1341 में, इस न्यायालय ने माना कि आदेश विकृति से ग्रस्त माना जाता है यदि कुछ प्रासंगिक साक्ष्य पर विचार नहीं किया गया है या कुछ अग्राह्य सामग्री पर विचार किया गया है या जहाँ यह कहा जा सकता है कि अधिकारियों के निष्कर्ष किसी भी साक्ष्य पर आधारित नहीं हैं या वे इतने विकृत हैं कि कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति उन निष्कर्षों तक नहीं पहुँच सकता। *कुलदीप सिंह बनाम कमिश्नर ऑफ पुलिस एवं अन्य, (1999) 2 एस.सी.सी. 10* में, इस न्यायालय ने माना कि यदि कोई निर्णय शून्य साक्ष्य या ऐसे साक्ष्य पर लिया गया है जो पूरी तरह से अविश्वसनीय है और जिस पर कोई भी तर्कसंगत व्यक्ति कार्रवाई नहीं करेगा, तो आदेश विकृत होगा। लेकिन यदि अभिलेख पर कुछ ऐसे साक्ष्य हैं जो स्वीकार्य हैं और जिन पर भरोसा किया जा सकता है, चाहे वे कितने भी संक्षिप्त क्यों न हों, तो निष्कर्षों को विकृत नहीं माना जाएगा और निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जाएगा। *गया दीन (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य बनाम हनुमान प्रसाद (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से एवं अन्य, ए.आई.आर. 2001 एस.सी. 386* में, यह माना गया है कि किसी प्राधिकारी का आदेश इस अर्थ में विकृत है कि आदेश अभिलेख पर लाए गए साक्ष्य द्वारा समर्थित नहीं है या यह कानून के विरुद्ध है या यह प्रक्रियात्मक अनियमितता के दोष से ग्रस्त है। *राजिंदर कुमार किंद्रा बनाम दिल्ली प्रशासन, सचिव (श्रम) एवं अन्य के माध्यम से, ए.आई.आर. 1984 एस.सी. 1805* में, इस न्यायालय ने एक कर्मचारी के विरुद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही के मामले से निपटते समय इस मुद्दे पर विचार किया और निम्नानुसार माना:

> "17. यह समान रूप से सुस्थापित है कि जहाँ एक अर्ध-न्यायिक न्यायाधिकरण या मध्यस्थ बिना किसी कानूनी साक्ष्य के आधार पर निष्कर्ष दर्ज करता है और

निष्कर्ष या तो उसका 'इप्स डिक्सिट' (स्वयं का कथन) होता है या अटकलों और अनुमानों पर आधारित होता है, तो जांच, मस्तिष्क के गैर-अनुप्रयोग की अतिरिक्त कमी से ग्रस्त होती है और दूषित हो जाती है... हमारी राय में, उच्च न्यायालय इस संक्षिप्त, दिखावटी और पूरी तरह से असमर्थनीय आधार पर कि मामला साक्ष्य के मूल्यांकन पर निर्भर करता है, इस तर्क की जांच करने से इनकार करने में स्पष्ट रूप से त्रुटि पर था कि निष्कर्ष विकृत थे।"

15. वर्तमान मामले में, अधीनस्थ न्यालयों ने संपूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन किया था और इस निष्कर्ष पर पहुँची थीं कि प्रतिवादी संख्या 1, श्रीमती रेंगम्मन, अलगसामी रेड्डियार की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी थीं और इस प्रकार उन्होंने मुथु रेड्डियार के साथ उनके विवाह की उपधारणा नहीं की। उच्च न्यायालय ने वादी के गवाहों, विशेष रूप से कुमारसामी-अभियोजन साक्षी 2 और कंडासामी-अभियोजन साक्षी 5 के साक्ष्यों का कोई संदर्भ दिए बिना तथ्य के निष्कर्ष को उलट दिया और इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि उक्त दोनों पक्षों के बीच मात्र सह-जीवन संबंध उनके बीच विवाह की उपधारणा का कारण बनेगा। उच्च न्यायालय यह समझने में विफल रहा कि अधीनस्थ न्यालयों के निर्णय साक्ष्य अधिनियम, 1872 (जिसे इसके बाद 'साक्ष्य अधिनियम' कहा गया है) की धारा 112 के तहत प्रदान की गई एक अन्य उपधारणा पर आधारित हो सकते थे।

16. साक्ष्य अधिनियम की धारा 112 एक बच्चे के वैध होने की उपधारणा का प्रावधान करती है और ऐसी उपधारणा को केवल साक्ष्यों की प्रबल प्रधानता द्वारा ही विस्थापित किया जा सकता है, न कि केवल संभावनाओं के संतुलन के आधार पर, क्योंकि कानून को निर्दोष बच्चे के पक्ष में खड़ा होना चाहिए ताकि उसे नाजायज होने से बचाया जा सके। वर्तमान मामले में, चूंकि रेंगम्मन और अलगसामी के बीच 'अगम्यता' के प्रमाण को कभी अभिवचनों में नहीं लाया गया था, तो उसे साबित करने की बात ही क्या करें, इसलिए उच्च न्यायालय ने मामले की सही परिप्रेक्ष्य में जांच नहीं की है। यह स्थापित कानूनी प्रस्ताव है कि

प्रासंगिक अवधि के दौरान विवाह के पक्षों के बीच 'अगम्यता' का प्रमाण ही उस उपधारणा को खंडित करने का एकमात्र तरीका है। [देखें: *मोहब्बत अली खान बनाम मुहम्मद इब्राहिम खान एवं अन्य, ए.आई.आर. 1929 पी.सी. 135; चिलुकुरी वेंकटेश्वरलू बनाम चिलुकुरी वेंकटनारायण, ए.आई.आर. 1954 एस.सी. 176; महेंद्र मणिलाल नानावती बनाम सुशीला महेंद्र नानावती, ए.आई.आर. 1965 एस.सी. 364; पेरुमल नाडार (मृतक) विधिक प्रतिनिधियों के माध्यम से बनाम पोन्नुस्वामी नाडार (अल्पवयस्क), ए.आई.आर. 1971 एस.सी. 2352; अमरजीत कौर बनाम हरभजन सिंह एवं अन्य, (2003) 10 एस.सी.सी.228; सभा ह्यमावती देवी बनाम सेट्टी गंगाधरा स्वामी एवं अन्य, ए.आई.आर. 2005 एस.सी. 800; और श्री बनारसी दास बनाम टीकू दत्ता (श्रीमती) एवं अन्य, (2005) 4 एस.सी.सी.449*]।

17. उच्च न्यायालय ने अलगसामी और रेंगम्मन के बीच विवाह के तथ्य के संबंध में केवल श्रीमती सीताम्मन, बचाव साक्षी 1 ;मुथु रेड्डियार की सौतेली माँ के बयान पर भरोसा करते हुए निर्णय लिया है, जिसे अधीनस्थ न्यालयों ने ठोस कारण देते हुए और इस तथ्य पर ध्यान देते हुए अविश्वास किया था कि उसने केवल 10 रुपये खर्च करके उनके विवाह का प्रबंध किया था। उच्च न्यायालय ने दस्तावेजी साक्ष्यों का भी पुनर्मूल्यांकन किया और अधीनस्थ न्यालयों द्वारा लिए गए दृष्टिकोण के विपरीत दृष्टिकोण अपनाया। उच्च न्यायालय के लिए द्वितीय अपील में साक्ष्यों का पुनर्मूल्यांकन करना उचित नहीं था क्योंकि इसमें कानून का कोई सारवान प्रश्न शामिल नहीं था। दोनों अधीनस्थ न्यालयों ने पाया था कि रेंगम्मन, अलगसामी की कानूनी रूप से विवाहित पत्नी थीं। अधीनस्थ न्यालयों ने अपीलकर्ता/याचिकाकर्ता द्वारा परीक्षित गवाहों, विशेष रूप से कुमारसामी-अभियोजन साक्षी 2 और कंडासामी- अभियोजन साक्षी 5 पर बहुत अधिक भरोसा किया था।

18. इस तथ्य को देखते हुए कि उच्च न्यायालय ने वादी के गवाहों के बयानों पर ध्यान तक नहीं दिया, उच्च न्यायालय द्वारा दर्ज किए गए निष्कर्ष स्वयं विकृत हो जाते हैं और इस प्रकार अभिखंडित किए जाने योग्य हैं।

19. जो भी हो, अधिनियम की धारा 5(1) हिंदू विवाह के लिए शर्तें निर्धारित करती है। यह प्रावधान करती है कि किन्हीं दो हिंदुओं के बीच विवाह तब संपन्न किया जा सकता है जब विवाह के समय उनमें से किसी का भी जीवनसाथी जीवित न हो। धारा 11 प्रावधान करती है कि कोई भी विवाह जो अधिनियम की धारा 5(1) के उल्लंघन में है, शून्य होगा। अधिनियम की धारा 16 को 1976 के संशोधन अधिनियम द्वारा संशोधित किया गया था और संशोधित प्रावधान निम्नानुसार हैं:-

> "*शून्य और शून्यकरणीय विवाहों से उत्पन्न बच्चों की वैधता* - (1) इस बात के बावजूद कि कोई विवाह धारा 11 के तहत अकृत और शून्य है, ऐसे विवाह से उत्पन्न कोई भी बच्चा जो वैध होता यदि विवाह मान्य होता, वह वैध होगा........
>
> (2) जहाँ धारा 12 के तहत किसी शून्यकरणीय विवाह के संबंध में अकृतता की डिक्री दी जाती है, वहाँ डिक्री होने से पहले उत्पन्न या गर्भस्थ कोई भी बच्चा, जो विवाह के पक्षों की वैध संतान होता यदि डिक्री की तिथि पर इसे रद्द करने के बजाय भंग कर दिया गया होता, तो अकृतता की डिक्री के बावजूद उसे उनकी वैध संतान माना जाएगा।
>
> (3) उप-धारा (1) या उप-धारा (2) में निहित किसी भी बात का अर्थ किसी ऐसे विवाह के बच्चे को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के तहत अकृतता की डिक्री द्वारा रद्द कर दिया गया है, माता-पिता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति में कोई अधिकार प्रदान करने के रूप में नहीं लगाया जाएगा, जहाँ इस अधिनियम के पारित होने के अभाव में, ऐसा बच्चा अपने माता-पिता की वैध संतान न होने के कारण ऐसे किसी भी अधिकार को रखने या प्राप्त करने में असमर्थ होता।" (जोर दिया गया)

20. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि अधिनियम की धारा 16 का मुख्य उद्देश्य

सामाजिक सुधार लाना और बच्चों के एक समूह को वैधता का सामाजिक दर्जा प्रदान करना है, जिन्हें अन्यथा नाजायज माना जाता था।

21.*एस.पी.एस. बालसुब्रमण्यम बनाम सुरुत्तयन उर्फ़ अंदली पडायची एवं अन्य, ए.आई.आर. 1992 एस.सी. 756* में, इस न्यायालय ने माना कि यदि पुरुष और महिला एक ही छत के नीचे रह रहे हैं और कई वर्षों तक सहवास करते हैं, तो साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के तहत यह उपधारणा होगी कि वे पति और पत्नी के रूप में रहते हैं और उनसे पैदा हुए बच्चे नाजायज नहीं होंगे।

22. एस. खुशबू बनाम कनिअम्मल एवं अन्य, जे.टी. 2010 (4) एस.सी. 478 में, इस न्यायालय ने लता सिंह बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य, ए.आई.आर. 2006 एस.सी. 2522 में अपने पिछले निर्णय पर भरोसा करते हुए माना कि 'लिव-इन-रिलेशनशिप' केवल अविवाहित वयस्क विपरीतलिंगी व्यक्तियों में ही अनुमेय है। यदि उक्त व्यक्तियों में से कोई एक विवाहित है, तो पुरुष जारकर्म के अपराध का दोषी हो सकता है और यह आईपीसी की धारा 497 के तहत एक अपराध होगा।

23.*श्रीमती पी.ई.के. कल्लियाणी अम्मा एवं अन्य बनाम के. देवी एवं अन्य, ए.आई.आर. 1996 एस.सी. 1963* में, इस न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 16 भारत के संविधान के अधिकारातीत नहीं है। धारा 16 में निहित कानूनी कल्पना के आलोक में, नाजायज बच्चों को उनके माता-पिता की संपत्तियों के उत्तराधिकार सहित सभी व्यावहारिक उद्देश्यों के लिए वैध माना जाना चाहिए। हालांकि, वे इस नियम के आधार पर किसी अन्य रिश्तेदार की संपत्तियों के उत्तराधिकारी नहीं हो सकते, जो अपने संचालन में माता-पिता की संपत्तियों तक ही सीमित है।

24.*रामेश्वरी देवी बनाम बिहार राज्य एवं अन्य, ए.आई.आर. 2000 एस.सी. 735* में, इस न्यायालय ने एक ऐसे मामले का निपटारा किया जिसमें एक सरकारी कर्मचारी की मृत्यु के बाद, उस महिला से पैदा हुए नाजायज बच्चों ने, जो उक्त कर्मचारी के साथ रह रही थी,

कानूनी विवाह से पैदा हुए बच्चों के साथ पेंशन/अनुतोष और अन्य मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभों में हिस्से का दावा किया था। इस न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 16 के तहत शून्य विवाह के बच्चे वैध हैं। चूंकि कर्मचारी, जो एक हिंदू था, बिना वसीयत मर गया था, इसलिए मृतक कर्मचारी के शून्य विवाह से पैदा हुए बच्चे पारिवारिक पेंशन, मृत्यु-सह-सेवानिवृत्ति लाभ और अनुतोष में हिस्सा पाने के हकदार थे।

25. जीनिया किओटिन एवं अन्य बनाम कुमार सीताराम मांझी एवं अन्य, (2003) 1 एस.सी.सी. 730 में, इस न्यायालय ने माना कि अधिनियम की धारा 16 में कल्पना के नियम को शामिल करते हुए, नाजायज बच्चे केवल अपने माता-पिता की स्व-अर्जित संपत्तियों में हिस्सा पाने के हकदार हुए हैं। न्यायालय ने निम्नानुसार माना :-

> "4 .... सामान्य कानून के तहत, वैध माने जाने के लिए एक बच्चे का जन्म कानूनी विवाह में होना चाहिए। यदि वैधानिक प्रावधानों के उल्लंघन के कारण विवाह स्वयं ही शून्य है, तो ऐसे विवाह से पैदा हुए किसी भी बच्चे का प्रभाव, स्वतः ही या ऐसा घोषित होने या रद्द होने पर, जैसा भी मामला हो, ऐसे विवाह के पक्षों से पैदा हुए बच्चों को नाजायज बनाने का होगा। बहुविवाह, जो अतीत में हिंदुओं के बीच अनुमेय और व्यापक रूप से प्रचलित था और समाज पर इसके बुरे प्रभाव माने जाते थे, हिंदू विवाह अधिनियम, 1955 को अधिनियमित करने में संसद के जनादेश द्वारा समाप्त कर दिया गया। बच्चों की वैध स्थिति, जो काफी हद तक उनके माता-पिता के बीच विवाह के मान्य या शून्य होने पर निर्भर थी, इस प्रकार माता-पिता के कृत्य पर निर्भर हो गई, जिस पर निर्दोष बच्चे का कोई वश या नियंत्रण नहीं था। लेकिन अपनी किसी गलती के बिना, निर्दोष बच्चे को जीवन में और समाज की नजर में नाजायज माने जाने के कारण स्थाई आघात सहना पड़ता था। विधायिका ने धारा 16 को अधिनियमित करके वास्तव में एक बड़ी सामाजिक बुराई को समाप्त करने के

लिए एक सराहनीय और नेक कार्य किया है। साथ ही, अधिनियम की धारा 16, बच्चों को वैध मानने का आदेश देने के नियम को शामिल करते हुए, इस बात के बावजूद कि विवाह शून्य या शून्यकरणीय था, ऐसे बच्चों द्वारा उत्तराधिकार या विरासत के संबंध में इसके आवेदन को केवल माता-पिता की संपत्तियों तक ही सीमित रखना चुना।

5.जहाँ तक अधिनियम की धारा 16 का संबंध है, हालांकि इसे उन बच्चों को वैध बनाने के लिए अधिनियमित किया गया था जो अन्यथा नाजायज होकर पीड़ित होते, साथ ही यह स्पष्ट रूप से उप-धारा (3) में एक 'नॉन-ओब्सटांटे' खंड वाले प्रावधान को शामिल करके विशेष रूप से यह निर्धारित करता है कि उप-धारा (1) या उप-धारा (2) में निहित किसी भी बात का अर्थ किसी ऐसे विवाह के बच्चे को, जो अकृत और शून्य है या जिसे धारा 12 के तहत अकृतता की डिक्री द्वारा रद्द कर दिया गया है, 'माता-पिता के अलावा किसी अन्य व्यक्ति की संपत्ति में' कोई अधिकार प्रदान करने के रूप में नहीं लगाया जाएगा, जहाँ इस अधिनियम के पारित होने के अभाव में, ऐसा बच्चा अपने माता-पिता की वैध संतान न होने के कारण ऐसे किसी भी अधिकार को रखने या प्राप्त करने में असमर्थ होता। विधायिका के स्वयं के ऐसे स्पष्ट आदेश के आलोक में, ऐसे बच्चों के लिए, जिन्हें धारा 16 के अभाव में नाजायज करार दिया गया होता, अधिनियम की धारा 16 को अधिनियमित करने के मात्र उद्देश्य या प्रयोजन का सहारा लेकर, किसी भी उपकल्पित या आनुमानिक तर्क प्रक्रिया के माध्यम से इसमें परिकल्पित अधिकारों से अधिक किसी भी अधिकार को स्वीकार करने की कोई गुंजाइश नहीं है। ऐसा करने का कोई भी प्रयास न केवल धारा 16 की उप-धारा (3) में विशेष रूप से शामिल प्रावधान के साथ हिंसा करने के समान होगा, बल्कि अधिनियम में व्यक्त इच्छा के विरुद्ध, व्याख्या की आड़ में इस विषय पर पुनः विधान बनाने

का प्रयास होगा। परिणामस्वरूप, हम अपीलकर्ताओं की ओर से दी गई दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं ...."

26. इस दृष्टिकोण को *नीलम्मा एवं अन्य बनाम सरोजम्मा एवं अन्य, (2006) 9 एस.सी.सी. 612* में इस न्यायालय द्वारा अनुमोदित और अनुपालन किया गया है।

27. इस प्रकार, यह स्पष्ट है कि ऐसी तथ्यात्मक स्थिति में, शून्य या शून्यकरणीय विवाह से पैदा हुआ बच्चा पैतृक सहदायिकी संपत्ति में उत्तराधिकार का दावा करने का हकदार नहीं है, बल्कि वह केवल स्व-अर्जित संपत्तियों, यदि कोई हो, में दावा करने का हकदार है।

28. वर्तमान मामले में, उत्तरदाता ने किसी भी स्तर पर यह अभिवचन नहीं किया था कि वाद की भूमि मुथु रेड्डियार की स्व-अर्जित संपत्ति थी। अभिलेख से यह स्पष्ट है कि मुथु रेड्डियार ने अपनी संयुक्त परिवार की संपत्तियों का विभाजन नहीं किया था और 1974 में उनकी मृत्यु निसंतान और बिना वसीयत के हुई थी। इसलिए, सह-जीवन संबंध से पैदा हुए नाजायज बच्चों द्वारा सहदायिकी संपत्ति के उत्तराधिकार का प्रश्न ही उत्पन्न नहीं हो सकता था। इस प्रकार, उच्च न्यायालय का निर्णय केवल इसी एकमात्र आधार पर अपास्त किए जाने योग्य है।

29. उपरोक्त के आलोक में, अपील सफल होती है और स्वीकार की जाती है। उच्च न्यायालय के दिनांक 10 जुलाई, 2001 के निर्णय और आदेश को एतद्द्वारा अपास्त किया जाता है। लागत के संबंध में कोई आदेश नहीं।

30. हालांकि, उत्तरदाता-5 के लिए कानून में अनुमेय कानूनी कार्यवाही का सहारा लेकर अपने विक्रेताओं से बिक्री प्रतिफल की वसूली करना खुला रहेगा क्योंकि उसने लंबित वाद के दौरान संपत्ति खरीदी है और अपीलकर्ता अभी भी वाद संपत्ति के कब्जे में हैं।

अपील स्वीकार की गई।

खंडन (डिस्क्लेमर)- स्थानीय भाषा में निर्णय के अनुवाद का आशय, पक्षकारों को इसे अपनी भाषा में समझने के उपयोग तक ही सीमित है और अन्य प्रयोजनार्थ इसका उपयोग नही किया जा सकता। समस्त व्यवहारिक, कार्यालयी, न्यायिक एवं सरकारी प्रयोजनार्थ, निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रमाणिक होगा साथ ही निष्पादन तथा कार्यान्वयन के प्रयोजनार्थ अनुमान्य होगा।